Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LII (52), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

मैत्रेयी पुष्पा के संदर्भ में नारी

दीपिका सेन* डॉ. अवधेश जैन**

* शोधार्थी, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी) शासकीय कमला नेहरू महिला महाविद्यालय, दमोह (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – मैत्रेयी पुष्पा समकलीन हिन्दी साहित्य की उन विरल स्त्री लेखिकाओं में अग्रणी हैं, जिन्होने नारी-विमर्श को केवल वैचारिक या सैद्धांतिक धरातल तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक यथार्थ और जीवनानुभवों से जोड़ा हैं। उनका साहित्य स्त्री की आतंरिक पीड़ा, बाह्य संघर्ष, सामाजिक शोषण और आत्मचेतना का जीवंत दस्तावेज हैं। वे स्त्री को दया, करूणा या सहानुभूति की वस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उसे एक सक्रिय जागरूक और निर्णयक्षम सत्ता के रूप में स्थापित करती हैं। इसी कारण मैत्रेयी पुष्पा का लेखन हिन्दी नारी-विमर्श में एक निर्णायक मोड़ प्रस्तुत करता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में नारी-विमर्श का मूल आधार स्त्री-अस्मिता की खोज हैं। उनकी रचनाओं की स्त्रियाँ परंपरागत ढाँचों जैसे-विवाह, परिवार, सामजिक मर्यादा और नैतिकता को यथावत स्वीकार नहीं करती बल्कि उन पर प्रश्न उठाती हैं। स्त्री के लिए निर्धारित भूमिकाएँ उनके यहाँ स्थिर नहीं हैं, बल्कि परिवर्तनशील हैं।उनका लेखन स्त्री-देह को लेकर समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं को भी तोड़ता हैं। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री-देह को न तो पवित्रता के आदर्श में बाँधती हैं, और न ही उसे केवल भोग की वस्तु के रूप में देखती हैं। वे देह को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भो से जोड़कर प्रस्तुत करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट करती है कि स्त्री-दमन केवल पुरूषों के कारण नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, परंपराओं और मूल्यों के कारण भी होता हैं। स्त्री कई बार स्वयं भी इन संरचनाओं का हिस्सा बनकर अपने दमन को अनजाने में स्वीकार लेती हैं। उनके साहित्य में स्त्री का संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी हैं वह अपने भीतर बैठे डर, संकोच और आत्महीनता से भी लड़ती हैं। यह आतंरिक संघर्ष उनके नारी-विमर्श को और अधिक गहन बनाता हैं।मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ विद्रही है, किन्तु यह, विद्रोह केवल उग्र नारेबाजी नहीं हैं। यह जीवन की परिस्थितियों से उपजा स्वभाविक प्रतिरोध हैं। वे अपने श्रम, प्रेम, देह और निर्णयों पर अधिकार चाहती हैं।

प्रस्तावना – हिन्दी साहित्य में नारी-विमर्श का उदय सामाजिक चेतना, लोकतांत्रिक मूल्यों और स्त्री अधिकार आंदोलनों के प्रभावस्वरूप हुआ हैं। लंबे समय तक साहित्य में स्त्री की उपस्थिति पुरूष दृष्टि से निर्धारित होती रही, जहाँ उसे या तो आदर्श, त्यागमयी और सहनशील रूप में प्रस्तुत किया गया या फिर पतन और नैतिक विचलन का प्रतीक बना दिया गया। किन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लेखन के सशक्त उद्भव के साथ यह दृष्टि बदलने लगी। स्त्री ने स्वयं अपने जीवनानुभवों, संघर्षो और आकांक्षाओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना आरंभ किया। इस परिवर्तनशील साहित्यिक परिदृष्य में मैत्रेयी पुष्पा का नाम विशेष महत्व रखता है, जिन्होने नारी विमर्श को एक नई वैचारिक और सामाजिक दिशा प्रदान की।

मैत्रेयी पुष्पा समकालीन हिन्दी साहित्य की एक सशक्त और विशिष्ट स्त्री लेखिका हैं। उनका साहित्य स्त्रती के यथार्थ जीवन, सामजिक संरचनाओं में उसकी स्थिति, उसके शोषण और उसके प्रतिरोध को गहरी, संवेदनशीलता और निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करता हैं। वे नारी-विमर्श को केवल वैचारिक बहस तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ और जीवन के अनुभवों से जोड़ती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवबंर 1944 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के सिर्कुरा गाँव में ब्राह्मण परिवार में हुआ। मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में जन्मी मैत्रेयी अपने माता-पिता की दूसरी संतान थी। उनकी माता कस्तूरी की पहली संतान एक बेटा था जो पैदा होकर मर गया था। उसके बाद मैत्रेयी के जन्म से न किसी को अधिक खुशी हुई न अधिक दुख। मैत्रेयी पुष्पा का पालन-पोषण बुंदेलखण्ड क्षेत्र में हुआ, जो उनकी रचनात्मक चेतना का स्थायी आधार बन गया। बुंदेलखण्ड का ग्रामीण परिवेश वहाँ की लोकसंस्कृति, सामाजिक विषमताएँ और विशेषत: स्त्री की स्थिति उनके साहित्य में अत्यन्त प्रामाणिक रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। उनके अनुभवजन्य लेखन में यह क्षेत्र केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सजीव पात्र की तरह उपस्थित रहता हैं।

उन्होने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता और कहानी से की, किन्तु उन्हें व्यापक पहचान उपन्यासकार के रूप में मिली। उनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ, स्त्री-चेतना और मानवीय संबंधों की जटिलताओं का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता हैं। चाक, अल्मा कबूतरी, इदन्नमम, झूला नट और त्रियाहाट जैसे उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य में नई बहसों को जन्म दिया।

मैत्रेयी पुष्पा समकालीन हिन्दी साहित्य की एक सशक्त, निर्भीक और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध लेखिका हैं। हिन्दी नारी-विमर्श को वैचारिक के साथ-साथ जीवनमूलक आधार प्रदान करने वाली लेखिकाओं में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वे उपन्यास, कहानी निबंध और आत्मकथात्मक लेखन सभी विधाओं में समान अधिकार और सशक्तह अभिव्यक्ति के साथ

उपस्थित हैं। मैत्रेयी पुष्पा के संदर्भ में विभिन्न विचारकों के अनेक मत हैं जिनमें से कुछ विचारकों के मत इस प्रकार हैं–

विजयबहादुर सिंह(2007) लिखते हैं कि 'मैत्रेयी को पढ़ता हूँ तो मेरे ध्यान में सबसे पहले कोई कहानी नहीं आती। एक पूरी दुनिया ध्यान में आती हैं। उसकी भीतरी बाहरी गतिविधियाँ, संस्कारों और विचारों की धाराएँ और अन्तर्प्रवाह याद आने लगते हैं। बुंदेलखण्ड के लोक जीवन की आजादी के बाद की वे करवटे भी जो अकेला बुंदेलखण्ड ही नहीं ले रहा हैं, भारत की वह सारी विशाल आबादी ले रही हैं, जिसे आम भारतीय समाज कहते हैं। इस रूप में देखें तो मैत्रेयी प्रेमचन्द और रेणु की परम्परा का उत्तराधिकार लिए आती है, पर हम जानते है वे न प्रेमचन्द है, न रेणु। वे तो मैत्रेयी हैं।'[1]

दीक्षित दया(2010) के अनुसार 'स्त्री अपने आपको दूसरों के मनोरंजन का साधन न समझे ना समझने दें। स्त्री को मनुष्य के नाते जीने को अधिकार है'[2]

प्रख्यात साहित्यकार और सम्पादक राजेन्द्र यादव(1998) का कथन हैं कि 'हिन्दी साहित्य में पहली बार हुआ कि किसी महिला ने शुद्ध गाँव कस्बे की कहानियाँ लिखी। मैत्रेयी के पास ऐसे अनुभव थे जिन पर मध्यम वर्गीय महिलाएँ सोच भी नहीं सकती। उन पीड़ित महिलाओं पर गहराई, संवेदना समझ के साथ–साथ लगातार लिखने वाली पहली महिला लेखिका मैत्रेयी हैं।.....रेणु के बाद संजीव के साथ–साथ मैत्रेयी अकेली लेखिका सबसे अधिक चरित्र हिन्दी साहित्य को दिये।'[3]

राजेन्द्र यादव(1996) अनुसार 'ग्रामीण सहजता और अनगढ़ता इनकी रचनाओं की अपनी विशेषता हैं। यही इनकी आचंलिक पृष्ठभूमि पर लिखी रचनाओं की लोकप्रियता का एक सबसे बड़ा कारण भी हैं।'[4]

धीरेन्द्र वर्मा(1997) के अनुसार 'मैत्रेयी माने ज्ञान का भंडार हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी का नाम मैत्रेयी था, जो अपने पति से कोई संपदा नहीं माँगती, केवल ज्ञान और विवके का वरदान माँगती हैं, ऐसा उनके नाम का संदर्भ हैं।'[5]

डॉ. क्रांति कुमार आपके कृतित्व के विषय में लिखते है 'वे प्रेमचंद, रेणु, श्रीलाल शुक्ल और कृष्णा सोबती की परंपरा का विकास करने वालों की पंक्ति में स्वीकार कर ली गई। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में भारतीय ग्रामीण जीवन के परिवेश का और उसमें प्रवाहित परंपरा एंव प्रगति की अंतर्धाराओं का जैसा और जितना अनुभव उनके पास है उतना संभवत: हिन्दी के अन्य किसी उपन्यासकार के पास नहीं।'[6]

श्री सत्यकाम तो यहाँ तक लिखते हैं 'रचनाकार को स्त्री–पुरूष के खाने में बाँटने में कोई औचित्य तो नहीं लगता फिर भी यह कहने से भी मैं अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ कि पिछले शताब्दी के अंतिम दशक में हिन्दी उपन्यास के क्षितिज पर महिला उपन्यासकारों का आधिपत्य रहा हैं।'[7]

स्त्री अस्मिता की खोज – नारी अस्मिता का तात्पर्य स्त्री की स्वतंत्र पहचान, आत्मनिर्णय और सामाजिक अस्तित्व से हैं। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की केन्द्रीय धुरी स्त्री है उनके साहित्य में नारी विमर्श का, मूल स्वर स्त्री–अस्मिता की खोज हैं। इनके उपन्यासों की स्त्रियां अपनी पहचान स्वयं निर्मित करती हैं उनके उपन्यासों की स्त्रियां अपने अस्तित्व, इच्छाओं और निर्णयों के लिए संघर्ष करती हैं

मैत्रेयी जी का उपन्यास 'इदन्नमम' स्त्री आत्मसम्मान और स्वयत्तता की ओर अग्रसर दिखाई देता हैं। इदन्नमम में लेखिका ने तीन पीढ़ियों की कथा मात्र नहीं कहीं हैं, बल्कि बउ(दादी), प्रेम(माँ), मंदा(बेटी) के माध्यम से ग्रामीण भारत की नारी–जीवन के संघर्षो, गरीबी, अशिक्षा और बदलती व्यवस्थाओं को यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया हैं। जहाँ मुख्य पात्र मंदाकिनी अपनी माँ और दादी के अनुभवों से सीखकर समाज और व्यवस्था के खिलाफ अपनी लड़ाई लड़ती है।

'सूरज ढल रहा हैं। घनेरे वनों में सुनहरी किरणों की लाल चमक करधई और खैर की फुनगियों को रंग रही है रोषनी पलाश, सेमल और कदम्ब के फूलों में भटक रही है और भटक रही है मन्दाकिनी।'[8]

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में नारी अस्मिता की खोज एक सतत् प्रक्रिया हैं। उनकी स्त्री न तो आदर्श है, न विद्रोह का प्रतीक मात्र, बल्कि जीवन के यथार्थ से जूझती हुई सचेत मनुष्य हैं। इनका साहित्य नारी अस्मिता को स्वर, साहस और संवेदना प्रदान करता हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतिरोध – पितृसत्तात्मक व्यवस्था परिवार, विवाह, धर्म, परंपरा और नैतिकता के माध्यम से स्त्री पर नियंत्रण स्थापित करती की सत्ता नहीं मानती, बल्कि एक व्यापक, सामाजिक संरचना के रूप में देखती हैं, जिसमें परंपराएँ, नैतिकताएँ और संस्थाएँ शामिल हैं। उनकी स्त्रियाँ इस व्यवस्था का प्रत्यक्ष या अप्रयत्क्ष रूप से विराध करती हैं। यह विरोध केवल, विद्रोह नहीं, बल्कि चेतनशील प्रतिरोध हैं। मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ प्रारंभ मे पितृसत्तात्मक दबाबों को सहती हुई दिखाई देती है किन्तु धीरे–धीरे उनके भीतर प्रतिरोध की चेतना विकसित होती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का चाक उपन्यास पितृसत्ता का प्रतीक है जैसे चाक पर कुम्हार मिट्टी के बर्तनों को अपनी इच्छानुसार आकार देता है इसी प्रकार चाक उपन्यास के पुरूष (केवल श्रीधर और भँवर को छोड़कर) स्त्रियों को अपनी इच्छानुसार ढ़ालने का प्रयास करता हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'सारंग' रूढियों, हिंसा और पितृसत्ता से जूझते हुए अपने अस्तित्व और पहचान की तलाश करती हैं।

'जब रंजीत सारंग से प्रधान पद के चुनाव से नाम वापस लेने को कहता हैं और ये भी कहता है कि तुम प्रधान बनकर रामराज्म कायम करोगी तो सारंग कहती है 'रामराज्य लेकर हम क्या करेंगे? सीता की कथा सुनी तो हैं। धरती में ही समा जाना हैं तो यह जद्दोजहद? अपने चलते कोई अन्याय न हो। जान की कीमत देकर इतनी सी बात छोटा सा संकल्प निभाने की इच्छा है बस'[9]

मैत्रेयी पुष्पा कहती है–'समाज से स्वतंत्र हो ऐसी बात नहीं। वह एक ऐसा समाज बनाना चाहती है जो उसको स्पेस दे। अब आप इसे चाहे 'से' कहें या 'में'। उनकी भी समाज में एक जगह होनी चाहिए जो कि नहीं हैं। 'बेटी सौ साठ, तौबबा की नाठ'। एक सौ साठ लड़कियाँ हो तब भी बाबा की नाठ हैं। स्त्री समाज से स्वतंत्रता नहीं बल्कि समाज में जगह चाहती है और अपनी बनाई जगह चाहती हैं उसके लिए समाज को बदलना होगा। पाँच–दस हजार पुराने स्त्री में क्या कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए?'[10]

स्त्री देह और देह राजनीति – मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में स्त्री–देह को लेकर साहसिक दृष्टि मिलती हैं। वे देह को पवित्रता–अपवित्रता की रूढ़ धारणाओं से मुक्त कर सामजिक और राजनीतिक संदर्भो में प्रस्तुत करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' बुंदेलखण्ड की कबूतर जनजाति की संघर्ष गाथा है, जो अल्मा नामक एक युवती के माध्यम से समाज के हाशियें पर जी रही इस जनजाति, विशेषकर महिलाओं के शोषण, शिक्षा और आत्म सम्मान की लड़ाई को दर्शाती हैं। कबूतरा जाति की कथा होने के साथ–साथ दिशाहीन राजनीति, अपराधीकरण, सत्ता के लिए होने वाले

संघर्ष को अल्मा, राणा, धीरज, रामसिंह, श्रीराम शास्त्री व सूरजभान आदि पात्रों के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में दर्शाया हैं।

इस उपन्यास में अल्मा की मन:स्थिति का लेखिका ने बड़ी ही सूक्ष्मता से वर्णन किया हैं 'उसके साथ क्या-क्या चल रहा हैं? यकायक अपने आपसे दहलने लगी आल्मा। कैसी चाह उठी है जो खत्म नहीं होती खत्म करने पर तुली है, कैसा सपना है, लग रहा है कि कोई खींच रहा हैं और वह उड़ी जा रही हैं।'[11]

लोकधर्मी भाषा और ग्रामीण यथार्थ – मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की भाषा सहज और प्रभावशाली हैं। बुंदेलखण्डी परिवेश, लोकबिंब और ग्रमीण संवेदनाएँ उनके, उपन्यासों को प्रमाणिकता प्रदान करती हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी जी लिखते है 'एक बोली जब आदर्श भाषा बनती हैं और प्रतिनिधि हो जाती हैं तो आस-पास की बोलियों पर उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता हैं। आज की खड़ी बोली ने ब्रज, अवधी, भोजपुरी सभी को प्रभावित किया हैं।

आदर्श भाषा का रूप पूरे क्षेत्र में एक ही नहीं होता। प्रादेशिक बोलियों का प्रभाव भी उस पर कुछ पड़ता हैं। यह प्रभाव व्याकरण और शब्द समूह तथा उच्चारण तीनों में ही देखा गया हैं। आज साहित्यिक और परिनिष्ठत खड़ी बोली का आगरा, पटना, बनारस, लखनऊ और दिल्ली में रूप एक नहीं हैं। इन पर क्रम से ब्रज, भोजपुरी, अवधी और पंजाबी आदि का प्रभाव हैं।[12]

निष्कर्ष – मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य हिन्दी नारी-विमर्श का एक सशक्त निर्भीक और यथार्थपरक प्रतिपादन प्रस्तुत करता हैं। उनकी रचनाओं में नारी केवल, सामाजिक अत्याचारों की पीड़िता नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली जागरूक सत्ता के रूप मे सामने आती हैं। वे स्त्री को करूणा या सहानुभूति की वस्तु न बनाकर, उसे चेतनशील, कर्मशील, मनुष्य के रूप में स्थापित करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के नारी-विमर्श की विशेषता यह हैं कि स्त्री-देह, श्रम, शोषण, और आत्मसम्मान जैसे विषयों को वे निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करती हैं जिससे नारी-विमर्श को नई वैचारिक गहराई मिलती हैं।

उनके साहित्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना केवल पुरूष-विरोध तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक मानसिकता तक विस्तृत हैं। उनकी स्त्रियाँ बाहरी शोषण के साथ-साथ आंतरिक भय, संकोच और आत्महीनता से भी संघर्ष करती हैं, जिससे नारी-विमर्श मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रभावशाली बनता हैं।

निष्कर्ष: कहा जा सकता हैं कि मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य हिन्दी नारी-विमर्श को यथार्थ, साहस और परिवर्तन की चेतना प्रदान करता हैं। उनकी रचनाएँ स्त्री को एक सक्रिय, जागरूक और परिवर्तनशील शक्ति के रूप में स्थापित करती हैं तथा समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी चेतना के सशक्त दस्तावेज के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वसुधा 72,जनवरी-मार्च 2007:विजयबहादुर सिंह पृ.112
2. दीक्षित दया,'तथ्य और सत्य', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली,2010 पृ.65
3. राजेन्द्र यादव, गोमा हँसती है की भमिका से
4. गोमा हँसती है, किताबघर 24,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998
5. राजेन्द्र यादव, 'हंस',1996, पृ.20
6. धीरेन्द्र वर्मा,'आधुनिक हिन्दी शब्दकोश', ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी, 1997,पृ.200
7. वसुधा, समय के साथ चाक पर घूमती हुई औरत, डॉ. क्रांतिकुमार, पृ.42
8. नारी अस्मिता की तलाश: सत्यकाम
9. इदन्नमम: राजकमल पेपर बैक्स, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति:2002
10. चाक: राजकमल पेपर बैक्स, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति:2004
11. खुली खिड़कियाँ, मैत्रेयी पुष्पा,पृ.113
12. अल्मा कबूतरी: राजकमल पेपर बैक्स, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति:2001
13. भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद,1977

****